ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

वेदों में संगीत के तत्व

Dr. Santosh Kumar Sourtha

Lecturer (Sanskrit), S.N.K.P. Govt. PG College, Neem Ka Thana, Sikar, Rajasthan, India

सार

प्रगैतिहासिक काल से ही भारत में संगीत की समृद्ध परम्परा रही है। गिने-चुने देशों में ही संगीत की इतनी पुरानी एवं इतनी समृद्ध परम्परा पायी जाती है। माना जाता है कि संगीत का प्रारम्भ सिंधु घाटी की सभ्यता के काल में हुआ हालांकि इस दावे के एकमात्र साक्ष्य हैं उस समय की एक नृत्य बाला की मुद्रा में कांस्य मूर्ति और नृत्य, नाटक और संगीत के देवता की पूजा का प्रचलन। सिंधु घाटी की सभ्यता के पतन के पश्चात् वैदिक संगीत की अवस्था का प्रारम्भ हुआ जिसमें संगीत की शैली में भजनों और मंत्रों के उच्चारण से ईश्वर की पूजा और अर्चना की जाती थी। इसके अतिरिक्त दो भारतीय महाकाव्यों - रामायण और महाभारत की रचना में संगीत का मुख्य प्रभाव रहा। भारत में सांस्कृतिक काल से लेकर आधुनिक युग तक आते-आते संगीत की शैली और पद्धति में जबरदस्त परिवर्तन हुआ है। भारतीय संगीत के इतिहास के महान संगीतकारों जैसे कि स्वामी हरिदास, तानसेन, अमीर खुसरो आदि ने भारतीय संगीत की उन्नति में बहुत योगदान किया है जिसकी कीर्ति को पंडित रवि शंकर, भीमसेन गुरूराज जोशी, पंडित जसराज, प्रभा अत्रे, सुल्तान खान आदि जैसे संगीत प्रेमियों ने आज के युग में भी कायम रखा हुआ है।

भारतीय संगीत में यह माना गया है कि संगीत के आदि प्रेरक शिव और सरस्वती है।[1] इसका तात्पर्य यही जान पड़ता है कि मानव इतनी उच्च कला को बिना किसी दैवी प्रेरणा के, केवल अपने बल पर, विकसित नहीं कर सकता।

परिचय

वैदिक युग में 'संगीत' समाज में स्थान बना चुका था। सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'ऋग्वेद' में आर्यो के आमोद-प्रमोद का मुख्य साधन संगीत को बताया गया है। अनेक वाद्यों का आविष्कार भी ऋग्वेद के समय में बताया जाता है। 'यजुर्वेद' में संगीत को अनेक लोगों की आजीविका का साधन बताया गया, फिर गान प्रधान वेद 'सामवेद' आया, जिसे संगीत का मूल ग्रन्थ माना गया। 'सामवेद' में उच्चारण की दृष्टि से तीन और संगीत की दृष्टि से सात प्राकार के स्वरों का उल्लेख है। 'सामवेद' का गान (सामगान) मेसोपोटामिया, फैल्डिया, अक्कड़, सुमेर, बवेरु, असुर, सुर, यरुशलम, ईरान, अरब, फिनिशिया व मिस्र के धार्मिक संगीत से पर्याप्त मात्रा में मिलता-जुलता था।[1,2]

उत्तर वैदिक काल के 'रामायण' ग्रन्थ में भेरी, दुंदभि, वीणा, मृदंग व घड़ा आदि वाद्य यंत्रों व भँवरों के गान का वर्णन मिलता है, तो 'महाभारत' में कृष्ण की बाँसुरी के जादुई प्रभाव से सभी प्रभावित होते हैं। अज्ञातवास के दौरान अर्जुन ने उत्तरा को संगीत-नृत्य सिखाने हेतु बृहन्नला का रूप धारण किया। पौराणिक काल के 'तैत्तिरीय उपनिषद', 'ऐतरेय उपनिषद', 'शतपथ ब्राह्मण' के अलावा 'याज्ञवल्क्य-रत्न प्रदीपिका', 'प्रतिभाष्यप्रदीप' और 'नारदीय शिक्षा' जैसे ग्रन्थों से भी हमें उस समय के संगीत का परिचय मिलता है। चौथी शताब्दी में भरत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' के छः अध्यायों में संगीत पर ही चर्चा की। इनमें विभिन्न वाद्यों का वर्णन, उनकी उत्पत्ति, उन्हें बजाने के तरीकों, स्वर, छन्द, लय व विभिन्न कालों के बारे में विस्तार से लिखा गया है। इस ग्रन्थ में भरत मुनि ने गायकों और वादकों के गुणों और दोषों पर भी खुलकर लिखा है। बाद में छः राग 'भैरव', 'हिंडोल', 'कैशिक', 'दीपक', 'श्रीराग' और 'मेध' प्रचार में आये। पाँचवीं शताब्दी के आसपास मतंग मुनि द्वारा रचित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'वृहददेशी' से पता चलता है कि उस समय तक लोग रागों के बारे में जानने लगे थे। लोगों द्वारा गाये-बजाये जाने वाले रागों को मतंग मुनि ने देशी राग कहा और देशी रागों के नियमों को समझाने हेतु 'वृहद्देशी' ग्रन्थ की रचना की। मतंग ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अच्छी तरह से सोच-विचार कर पाया कि चार या पाँच स्वरों से कम में राग बन ही नहीं सकता। पाणिनी के 'अष्टाध्यायी' में भी अनेक वाद्यों जैसे मृदंग, झर्झर, हुड़क तथा गायकों व नर्तकों सम्बन्धी कई बातों का उल्लेख है। सातवीं–आठवीं शताब्दी में 'नारदीय शिक्षा' और 'संगीत मकरंद' की रचना हुई। 'संगीत मकरंद' में राग में लगने वाले स्वरों के अनुसार उन्हें अलग-अलग वर्गों में बाँटा गया है और रागों को गाने-बजाने के समय पर भी गम्भीरता से सोचा गया है।

ग्यारहवीं शताब्दी में मुसलमान अपने साथ फारस का संगीत लाए। उनकी और हमारी संगीत पद्धतियों के मेल से भारतीय संगीत में काफी बदलाव आया। उस दौर के राजा-महाराजा भी संगीत-कला के प्रेमी थे और दूसरे संगीतज्ञों को आश्रय देकर उनकी कला को निखारने-सँवारने में मदद करते थे। बादशाह अकबर के दरबार में 36 संगीतज्ञ थे। उसी दौर के तानसेन, बैजूबावरा, रामदास व

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

तानरंग खाँ के नाम आज भी चर्चित हैं। जहाँगीर के दरबार में खुर्रमदाद, मक्खू, छत्तर खाँ व विलास खाँ नामक संगीतज्ञ थे। कहा जाता है कि शाहजहाँ तो खुद भी अच्छा गाते थे और गायकों को सोने-चाँदी के सिक्कों से तौलवाकर ईनाम दिया करते थे। मुगलवंश के एक और बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले का नाम तो कई पुराने गीतों में आज भी मिलता है। ग्वालियर के राजा मानसिंह भी संगीत प्रेमी थे। उनके समय में ही संगीत की खास शैली 'ध्रुपद' का विकास हुआ। 12वीं शताब्दी में संगीतज्ञ जयदेव ने 'गीतगोविन्द' नामक संस्कृत ग्रन्थ लिखा, इसे सकारण 'अष्टपदी' भी कहा जाता है। तेरहवीं शताब्दी में पण्डित शारंगदेव ने 'संगीतरत्नाकर' की रचना की। इस ग्रन्थ में अपने दौर के प्रचलित संगीत और भरत व मतंग के समय के संगीत का गहन अध्ययन मिलता है। सात अध्यायों में रचे होने के कारण इस उपयोगी ग्रन्थ को 'सप्ताध्यायी' भी कहा जाता है। शारंगदेव द्वारा रचित 'संगीत रत्नाकर' के अतिरिक्त चौदहवीं शताब्दी में विद्यारण्य द्वारा 'संगीत सार', पन्द्रहवीं शताब्दी में लोचन कवि द्वारा 'राग तरंगिणी', सोलहवीं शताब्दी में पुण्डरीक विट्ठल द्वारा 'सद्रागचंद्रोदय', रामामात्य द्वारा 'स्वरमेल कलानिधि', सत्रहवीं शताब्दी में हृदयनारायण देव द्वारा 'हृदय प्रकाश' व 'हृदय कौतुकम्', व्यंकटमखी द्वारा 'चतुर्दंडिप्रकाशिका', अहोबल द्वारा'संगीत पारिजात', दामोदर पण्डित द्वारा 'संगीत दर्पण,' भावभट्ट द्वारा 'अनूप विलास' व 'अनूप संगीत रत्नाकार', सोमनाथ द्वारा 'अष्टोत्तरशतताल लक्षणाम' और अठारहवीं शताब्दी में श्रीनिवास पण्डित द्वारा 'राग तत्व विबोधः', तुलजेन्द्र भोंसले द्वारा 'संगीत सारामृतम्' व 'राग लक्षमण्' ग्रन्थों की रचना हुई। स्वामी हरिदास, विट्ठल, कृष्णदास, त्यागराज, मुथ्थुस्वामी दीक्षितर और श्यामा शास्त्री जैसे अनेक संत कवि–संगीतज्ञों ने भी उत्तर आदि दक्षिण भारत के संगीत को अनगिनत रचनाएँ दीं। कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत शताब्दियों के प्रयास व प्रयोग का परिणाम है।

वैदिक काल का संगीत[3,5]

भारतीय संगीत का आदि रूप वेदों में मिलता है। वेद के काल के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है, किंतु उसका काल ईसा से लगभग 2000 वर्ष पूर्व था - इसपर प्राय: सभी विद्वान् सहमत है। इसलिए भारतीय संगीत का इतिहास कम से कम ४००० वर्ष प्राचीन है।

वेदों में वाण, वीणा और कर्करि इत्यादि तंतु वाद्यों का उल्लेख मिलता है। अवनद्ध वाद्यों में दुदुंभि, गर्गर इत्यादि का, घनवाद्यों में आघाट या आघाटि और सुषिर वाद्यों में बाकुर, नाडी, तूणव, शंख इत्यादि का उल्लेख है। यजुर्वेद में ३०वें कांड के १९वें और २०वें मंत्र में कई वाद्य बजानेवालों का उल्लेख है जिससे प्रतीत होता है कि उस समय तक कई प्रकार के वाद्यवादन का व्यवसाय हो चला था।

संसार भर में सबसे प्राचीन संगीत सामवेद में मिलता है। उस समय "स्वर" को "यम" कहते थे। साम का संगीत से इतना घनिष्ठ संबंध था कि साम को स्वर का पर्याय समझने लग गए थे। छांदोग्योपनिषद् में यह बात प्रश्नोत्तर के रूप में स्पष्ट की गई है। "का साम्नो गतिरिति? स्वर इति होवाच" (छा. उ. 1. 8. 4)। (प्रश्न "साम की गति क्या है?" उत्तर "स्वर"। साम का "स्व" अपनापन "स्वर" है। "तस्य हैतस्य साम्नो य: स्वं वेद, भवति हास्य स्वं, तस्य स्वर एव स्वम्" (बृ. उ. 1. 3. 25) अर्थात् जो साम के स्वर को जानता है उसे "स्व" प्राप्त होता है। साम का "स्व" स्वर ही है।

वैदिक काल में तीन स्वरों का गान 'सामिक' कहलाता था। "सामिक" शब्द से ही जान पड़ता है कि पहले "साम" तीन स्वरों से ही गाया जाता था। ये स्वर "ग रे स" थे। धीरे-धीरे गान चार, पाँच, छह और सात स्वरों के होने लगे। छह और सात स्वरों के तो बहुत ही कम साम मिलते हैं। अधिक "साम" तीन से पाँच स्वरों तक के मिलते हैं। साम के यमों (स्वरों) की जो संज्ञाएँ हैं उनसे उनकी प्राप्ति के क्रम का पता चलता है। जैसा हम कह चुके हैं, सामगायकों को स्पष्ट रूप से पहले "ग रे स" इन तीन यमों (स्वरों) की प्राप्ति हुई। इनका नाम हुआ - प्रथम, द्वितीय, तृतीय। ये सब अवरोही क्रम में थे। इनके अनंतर नि की प्राप्ति हुई जिसका नाम चतुर्थ हुआ। अधिकतर साम इन्हीं चार स्वरों के मिलते हैं। इन चारों स्वरों के नाम संख्यात्मक शब्दों में है। इनके अनंतर जो स्वर मिले उनके नाम वर्णनात्मक शब्दों द्वारा व्यक्त किए गए हैं। इससे इस कल्पना की पुष्टि होती है कि इनकी प्राप्ति बाद में हुई। "गांधार" से एक ऊँचे स्वर "मध्यम" की भी प्राप्ति हुई जिसका नाम "क्रुष्ट" (जोर से उच्चारित) पड़ा। निषाद से एक नीचे का स्वर जब प्राप्त हुआ तो उसका नाम "मंद" (गंभीर) पड़ा। जब इससे भी नीचे के एक और स्वर को प्राप्ति हुई तो उसका नाम पड़ा "अतिस्वार अथवा अतिस्वार्य"। इसका अर्थ है स्वरण (ध्वनन) करने की अंतिम सीमा।

संभाव्य स्वरों के नियत क्रम का जो समूह है वह संगीत में "साम" कहलाता है। यूरोपीय संगीत में इसे "स्केल" कहते हैं।

हम देख सकते हैं कि धीरे-धीरे विकसित होकर साम का पूर्ण ग्राम इस प्रकार बना-

क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, मंद्र, अतिस्वार्थ[7,8]

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि साम का ग्राम अवरोही क्रम का था। नीचे हम सामग्रम और उनको आधुनिक संज्ञाओं को एक सारणी में देते हैं :

साम	आधुनिक
कृष्ट	मध्यम (म)
प्रथम	गांधार (ग)
द्वितीय	ऋषभ (रे)
तृतीय	षड्ज (स)
चतुर्थ	निषाद (नि)
मंद्र	धैवत (ध)
अतिस्वार्य	पंचम (प)

सामगान के प्राय: सात भाग होते हैं - हुंकार अथवा हिंकार, प्रस्ताव, आदि उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन। इसके मुख्य गायक को उद्गाता कहते हैं। उद्गाता के दो सहायक गायक होते हैं जिनको प्रस्तोता और प्रतिहर्ता कहते हैं। गान एक हिंकार अथवा हुंकार से प्रारंभ होता है जिसका उच्चार उद्गाता, प्रस्तोता और प्रतिहर्ता एक साथ करते हैं। उसके मुख्य भाग को उद्गाथ कहते हैं। इसे उद्गाता गाता है। इसके अनंतर एक भाग होता है जिसे प्रतिहार कहते हैं। इसे प्रतिहर्ता गाता है। इसके अनंतर जो भाग आता है उसे उपद्रव कहते हैं। इसे उद्गाता गाता है। निधन या अंतिम भाग को उद्गाता, प्रस्तोता और प्रतिहर्ता तीनों एक साथ मिलकर आते हैं। अंत में सब एक साथ मिलकर प्रणव अर्थात् ओंकार का सस्वर उच्चारण करते हैं।

सामगान की स्वरलिपि

सामगान की अपनी विशिष्ट स्वरलिपि (नोटेशन) है। लोगों में एक भ्रांत धारणा है कि भारतीय संगीत में स्वरलिपि नहीं थी और यह यूरोपीय संगीत का परिदान है। सभी वेदों के सस्वर पाठ के लिए उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के विशिष्ट चिह्न हैं किंतु सामवेद के गान के लिए ऋषियों ने एक पूरी स्वरलिपि तैयार कर ली थी। संसार भर में यह सबसे पुरानी स्वरलिपि तैयार कर ली थी। संसार भर में यह सबमें पुरानी स्वरलिपि है। सुमेर के गान की भी कुछ स्वरलिपि यत्रतत्र खुदी हुई मिलती है। किंतु उसका कोई साहित्य नहीं मिलता। अत: उसके विषय में विशिष्ट रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। किन्तु साम के सारे मंत्र स्वरलिपि में लिखे मिलते हैं, इसलिए वे आज भी उसी रूप में गाए जा सकते हैं।

महाकाव्य काल में संगीत

वाल्मीकि रामायण में भेरी, दुंदुभि, मृदंग, पटह, घट, पणव, डिंडिम, आडंवर, वीणा इत्यादि वाद्यों और जातिगायन का उल्लेख मिलता है। जाति, राग का आदिरूप है। महाभारत में सप्त स्वरों और गांधार ग्राम का उल्लेख आता है। महाजनक जातक (लगभग 200 ई. पू.) में चार परम महाशब्दों का उल्लेख है। इन्हें राजा उपाधि रूप में विद्वान् को प्रदान करता था।

पुरनानूरू और पत्तुपाटटु (100-200 ई.) नामक तमिल ग्रंथों में अवनद्ध (चमड़े से मढ़े हुए) वाद्यों का बहुत महत्व दिया गया है। ऐसे वाद्य का विशिष्ट स्थान होता था जिसे "मुरसुकट्टिल" कहते थे। तमिल के परिपादल (100-200 ई.) ग्रंथ में स्वरों और सात पालइ का उल्लेख है। "पालइ" मूर्छना से मिलता है। उसमें "याल" नामक तंत्री वाद्य का भी उल्लेख है। "याल" के एक प्रकार में एक सहस्र तक तार होते थे।

दक्षिण के एक बौद्ध नाटक सिलप्पडिगारन् (300 ई.) में भी कुछ संगीतविषयक बातों का समावेश है। इसमें वीणा, याल, बाँसुरी, पटह इत्यादि वाद्यों का जिक्र है। उस समय के प्रचलित रागों का भी इसमें उल्लेख है। उसी समय के "तिवाकरम्" नामक एक जैन कोश में भी संगीत के विषय में कुछ जानकारी दी गई है। इसमें संपूर्ण षाडव और ओडव रागों का उल्लेख तथा है तथा श्रुतियों और सात स्वरों का भी वर्णन है।

कालिदास के नाटकों में संगीत की चर्चा इतस्तत: आई है। मालविकाग्निमित्र में तो संगीत में दो शिष्यों की पूरी प्रतियोगिता ही दिखलाई गई है।[9,10]

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र

भारतीय संगीत का जो सबसे प्राचीन ग्रंथ मिलता है वह है भरत का नाट्यशास्त्र। भरत के काल के विषय में विवाद है। यह एक संग्रह ग्रंथ है। इसलिए इसके काल का निर्णय करना और कठिन हो गया है। विद्वान् लोग इसका काल लगभग ई. पू. 500 से 400 ई. तक मानते हैं। नाट्यशास्त्र में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्छना, जाति और ताल का विशद विवेचन किया गया है। भरत ने श्रुतियों का विचार स्वर की स्थापना के लिए किया है। उन्होंने 4 श्रुतियों के अंतराल पर षड्ज रखा है, उसके अनंतर 3 श्रुतियों के अंतराल पर ऋषभ, 2 श्रुतियों के अंतराल पर गांधार, 4 श्रुतियों के अंतराल पर मध्यम, फिर 4 श्रुतियों के अंतराल पर पंचम, 3 श्रुतियों के अंतराल पर धैवत और 2 श्रुतियों के अंतराल पर निपाद रखा है। इस प्रकार श्रुतियों की कुल संख्या 22 मानी है। भरत ने षड्जग्राम और मध्यमग्राम ऐसे दो ग्राम माने हैं। ऊपर जो श्रुतियों का अंतराल दिया है वह षड्ज ग्राम का है। यह ग्राम षड्ज से प्रारंभ होता है। इसलिए इसका षड्जग्राम नाम पड़ा। जो ग्राम मध्यम से प्रारंभ होता है उसका नाम है "मध्यम ग्राम"। मध्यम ग्राम में मध्यम चतु:श्रुति, पंचम त्रिश्रुति, धैवत चतुश्रुति, निषाद द्विश्रुति, षड्ज चतु:श्रुति, ऋषभ त्रिश्रुति, एवं गांधार द्विश्रुति होता है। गांधार ग्राम भरत को मान्य नहीं है।

मूर्छना का अर्थ है उभर या चमक। सात स्वरों के क्रमयुक्त प्रयोग की संज्ञा मूर्छना है (क्रमयुक्ता स्वरा: सप्त मूर्च्छनास्त्वभिसंज्ञिता: भरत, व.सं.अ. 28 पृ. 435)। भरत ने षड्ज और मध्यम दोनों ग्रामों में सात सात मूर्छनाएँ मानी हैं। मूर्छनाएँ "जाति" गान का आधार थीं। विशिष्ट स्वर विशेष प्रकार के सन्निवेश में "जाति" कहलाते थे। जिसमें ग्रह, अंश, तार, मंद्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडवत्व और औडुवत्व के नियमों द्वारा स्वरसन्निवेश किया जाता था, वह "जाति" कहलाता था। जातिगान संगीत की बहुत विकसित अवस्था का सूचक है। भरत के समय में जातिगान परिपूर्ण अवस्था का सूचक है। भरत के समय में जातिगान परिपूर्ण अवस्था पर पहुँचा हुआ था। जाति ही राग की जननी है। भरत ने सात ग्रामराग भी गिनाए हैं और यह बतलाया है कि वे जाति से प्रादुर्भूत होते हैं।

नाट्यशास्त्र में चच्चत्पुट, चाचपुट अथवा चंचूपुट, षटपितापुत्र अथवा पंचपाणि, संपत्केष्टक, उद्बद्ध अथवा उद्घट तालों का उल्लेख है। ये क्रमश: 8, 6, 12, 12 और 6 मात्राओं के ताल थे।

भरत के अनन्तर

तमिलनाडु के कुडुमियमालइ स्थान में एक उत्कीर्ण लेख मिला है जो संभवत: 7वीं ई. शती का है। इसमें सात जातियों, सात स्वरों और कुछ श्रुतियों का तथा अंतर गांधार और काकलि निषाद का उल्लेख है। इससे यह सिद्ध होता है कि भारत में सातवीं शती तक संगीत की पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी और उसके मुख्य विषय उत्तर से दक्षिण तक प्रसिद्ध और ग्राह्य हो चुके थे।

कुछ लोग नारदीय शिक्षा को भी 7वीं शती के आसपास का ग्रंथ मानते हैं। इस ग्रंथ के देखने से तो यही पता चलता है कि यह भरत के नाट्यशास्त्र से अधिक प्राचीन है। इसमें श्रुति, स्वर, ग्राम का उल्लेख तो है ही, वैदिक संगीत और गात्रवीणा का भी विशद वर्णन है। नाट्यशास्त्र में वैदिक संगीत का वर्णन नहीं है।

भरत के अनंतर मतंग ने संगीत पर बहुत प्रकाश डाला है। उनका काल लगभग 850 ई. है। उनकी बृहद्देशी जाति और राग, गांधर्व और देशी संगीत के बीच की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। उन्होंने "द्वादशस्वर मूर्च्छना" पद्धति चलाई, जिसका लगभग 200 वर्ष तक प्रभुत्व रहा। अभिनव गुप्त (लगभग 1000 ई.) ने अपने ग्रंथ अभिनव भारती में द्वादश स्वर मूर्छनावाद का खंडन किया है।

11वीं शती में मिथिला के राजा नान्यदेव ने "सरस्वती हृदयालंकार" ग्रंथ की रचना की। यह भरत के संगीत पर एक विस्तृत और सारगर्भ भाष्य है। इस ग्रंथ के अभी तक थोड़े से ही भाग मिले हैं।

पश्चिमी चालुक्यों के वंशज महाराज सोमेश्वर संगीत के प्रकांड विद्वान् थे। उन्होंने अपने "अभिलषितार्थ चिंतामणि" के चौथे प्रकरण में एक हजार एक सौ सोलह श्लोक संगीत पर लिखे हैं। भिन्न प्रकार के प्रबंधों का उदाहरण इस ग्रंथ की विशेषता है। इनक राज्यकाल 1127-1134 ई. है।

सोमेश्वर के पुत्र प्रतापचक्रवर्ती हुए जिनका दूसरा नाम जगदेकमल्ल था। इनका राज्यकाल 1134 से 1143 ई. तक रहा। इन्होंने "संगीत चूड़ामणि" नामक ग्रंथ की रचना की। यह बहुत प्रामाणिक ग्रंथ था। अब यह केवल खंडित रूप में मिलता है। बड़ोदा ओरिएंटल इंस्टिट्यूट ने इस खंडित ग्रंथ को 1958 में प्रकाशित किया है। इसमें स्वर, प्रबंध, ताल और राग के प्रकरण दिए हुए हैं। ताल का वर्णन इसमें बहुत विस्तृत है।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

चालुक्यवंशीय सौराष्ट्रनरेश महाराज हरिपाल संगीत के प्रसिद्ध विद्वान् थे। इनका काल 1175 ई. है। इन्होंने "संगीत सुधाकर" नामक ग्रंथ की रचना की है जो अभी तक अप्रकाशित है। इसमें लगभग 70 रागों का वर्णन है। इसमें नृत्य, वाद्य और गीत तीनों का प्रतिपादन हुआ है।

सोमराज देव ने 1180 में "संगीतरत्नावली" की रचना की। इनका दूसरा नाम सोमभूपाल था। यह सम्राट् अजयपाल के वेत्रधर थे। इनके ग्रंथ में स्वर, ग्राम, प्रबंध, राग, ताल, सभी का विशद वर्णन है। इन्होंने एकतंत्री और आलापिनी वीणा के भी लक्षण दिए हैं।

12वीं शती ई. में जयदेव ने "गीतगोविंद" की रचना की। इनका जन्म बोलपुर के पास केंदुला ग्राम में हुआ था। जयदेव ने विभिन्न राग और तालों में प्रबंध लिखे हैं। उन्होंने मालव, गुर्जरी, वसंत, रामकरी, मालवगौड़, कर्णाट, देशाख्य, देशीवराडी, गोंडकरी, भैरवी, वराडी, विभास, इत्यादि रागों और रूपक, यति, एकताल, इत्यादि तालों का प्रयोग किया है। अपने प्रबंधों की उन्होंने स्वरलिपि नहीं दी है, अत: यह कहना कठिन है कि वह इन्हें किस प्रकार गाते थे। किंतु इतना स्पष्ट है कि 12वीं शती तक प्रबंध की गायनशैली ख्याति प्राप्त कर चुकी थी और कई राग और ताल लोकप्रिय हो गए थे।

पाल्कुरिकि सोमनाथ ने तेलगु में 1270 ई. में "पंडिताराध्यचरितम्" नामक एक ग्रंथ लिखा। इसमें लगभग 32 प्रकार की वीणाओं का उल्लेख है और मृंदग में समहस्त और वैशलम् इत्यादि की चर्चा है। इसके अतिरिक्त गमक, ठाय, नृत्य इत्यादि का भी इसमें विस्तृत वर्णन है।

भारतीय संगीत का "नाट्यशास्त्र" के अंनतर सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ शारंगदेव का "संगीतरत्नाकर" है। शारंगदेव के पूर्वज कश्मीर से आए थे और दक्षिण के यादववंश के देवगिरि के राजा के यहाँ नियुक्त हो गए। अत: शारंगदेव को उत्तर और दक्षिण दोनों की संगीतपद्धतियों के अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ और उन्होंने समस्त भारतीय संगीत का विस्तृत शास्त्र "संगीतरत्नाकर" में दिया है। इसमें श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति, राग, प्रबंध, नृत्य, ताल सभी पर प्रकाश डाला गया है। इसमें संदेह नहीं कि यह भारतीय संगीत का आकर ग्रंथ है। इसकी रचना 13वीं शती में हुई थी।

शाकंभरि के राजा हम्मीर ने लगभग 1300 ई. में "श्रृंगारहार" की रचना की। इसमें भाषारागों और देशी रागों का वर्णन है। 120 ताल और एकतंत्री, नकुला, किन्नरी और आलापिनी इत्यादि वीणाओं की भी चर्चा है। जैन आचार्य पार्श्वदेव ने लगभग 1300 में "संगीत-समय-सार" की रचना की, जिसमें उस समय के संगीत का बहुत ही विशद वर्णन है।[11,12]

विचार-विमर्श

मुसलमानों के आगमन के पश्चात

14वीं और 15वीं शती में उत्तरी भारत के संगीत पर मुसलमानों के प्रभुत्व के कारण ईरानी संगीत का प्रभाव पड़ने लगा। सुल्तान अलाउद्दीन (1295-1316 ई.) के दरबार में अमीर खुसरों संगीत के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने कव्वाली मान का प्रचार किया। कहा जाता है, सितार वाद्य का भी निर्माण इन्हीं ने किया। किंतु "सहतार" वाद्य ईरान में पहले से वर्तमान था। हो सकता है, इसका कुछ रूपांतर करके उन्होंने इसे भारत में प्रोत्साहन दिया हो। कहा जाता है, तबला भी इन्हीं का निर्माण किया हुआ है। ख्याल गायकी का भी आरंभ इन्होंने किया। इन्होंने ईरानी धुनों का मिश्रण करके कुछ नए राग भी बनाए।

जौनपुर के सुलतान इब्राहीम शर्की (1400-1440 ई.) के समय मलिक सुलतान कड़ा (प्रयाग के समीप) के अधिपति थे। इनके पुत्र बहादुर मलिक संगीत के बहुत प्रेमी थे। इन्होंने प्राय: सभी संगीतग्रंथों को एकत्र किया और सारे भारत से संगीत के विद्वानों को आमंत्रित किया। उनको आदेश दिया कि सब ग्रंथों का अध्ययन करके एक ऐसे ग्रंथ की रचना करें जिसमें संगीत संबंधी मतभेदों का निर्णय हो। इन पंडितों ने बहुत कुछ विचार विमर्श के अनंतर एक ग्रन्थ की रचना की जिसका नाम उन्होंने "संगीतशिरोमणि" रखा। भारतीय संगीत के इतिहास में यह पहला प्रयत्न था जब विविध मतों पर विचार करके एक समन्वयात्मक ग्रंथ लिखा गया। इस दृष्टि से यह ग्रंथ बहुत ही महत्वपूर्ण है। दुर्भाग्यवश इस ग्रंथ के इस समय केवल प्रथम और चतुर्थ अध्याय ही प्राप्य है। यदि सपूर्ण ग्रंथ मिल जाए तो भारतीय संगीत पर बहुत बड़ा प्रकाश पड़ सकता है।

मेवाड़ के महाराणा कुंभ (1431-1469 ई.) जैसे वीर थे वैसे ही संगीत के भी बहुत प्रख्यात विद्वान् थे। यह भरत पद्धति से पूर्णतया परिचित थे। इन्होंने "गीतगोविंद" पर रसिकप्रिया नाम की एक टीका लिखी और संगीत पर "संगीतराज" नामक ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ 16 सहस्र श्लोको में पूर्ण हुआ है और गीत, वाद्य, नृत्य सभी पर इसमें पूर्ण प्रकाश डाला गया है।

लोचन कवि ने रागतरंगिणी का प्रणयन संभवत: 15वीं शती में किया। इसमें रागों का वर्गीकरण बारह ठाठों में किया गया है। 15वीं शती में चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से बंगाल में भक्तिसंगीत का अधिक प्रचार हुआ और संकीर्तन बहुत ही लोकप्रिय हो गया।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर (15वीं शती) ने ध्रुवपद शैली के गायन का विकास किया। संभवत: नायक बैजू इनके दरबार में थे। इन्होंने हिंदी में "मानकुतूहल" नामक ग्रंथ की रचना की। संगीत पर हिंदी में कदाचित् यह पहला ग्रंथ है। इसमें उस समय के रागों पर पर्याप्त प्रकाश डाल गया है।

मुगल बादशाहों में अकबर (1556-1605 ई.) ने संगीत को सबसे अधिक प्रोत्साहन दिया। इस काल में वृंदावन में स्वामी हरिदास संगीत के बहुत ही प्रख्यात आचार्य थे। कहा जाता है, तानसेन ने संगीत में शिक्षा पाई थी। इन्होंने सैकड़ों ध्रुवपद और धमार की रचना की। सूरदास, नंददास, कुंभनदास, गोविंदस्वामी इत्यादि वैष्णव कवियों ने "विष्णुपद" की रचना की जो मंदिरों में गाए जाते थे। ये छंद में आबद्ध थे, किंतु ध्रुवपद की शैली में गाए जाते थे।

तानसेन पहले रीवाँ के महाराज रामचंद्र बघेल के दरबार में थे। अकबर ने उन्हें वहाँ से बुलवाकर अपना दरबारी गायक नियुक्त किया। तानसेन की प्रचलित गानपद्धति का ज्ञान तो था ही, वह प्राचीन संगीत पद्धति से भी परिचित थे। इन्होंने दरबारी कानडा, मियाँ की तोड़ी, मियाँपल्लार इत्यादि रागों का निर्माण किया। वह अनुपम गायक थे। उनके वंशजों ने ध्रुवपद धमार की गायकी और वीणा और रवाव वादन को 20वीं शती तक जीवित रखा।

16वीं शती में पुंडरीक विट्ठल संगीतशास्त्र के अच्छे विद्वान् हुए हैं। वह कर्णाटक के शिवगंगा नामक गाँव में पैदा हुए थे किंतु उनका अधिक समय बीता खानदेश प्रांत के बुरहानपुर नगर में। जब अकबर ने खानदेश को 1599 में जीत लिया तो संभवत: वह दिल्ली आए। वह उत्तर भारतीय और कर्णाटक संगीत दोनों के पंडित थे। उनके लेख से ऐसा जान पड़ता है कि बुरहान खाँ ने उन्हें दोनों के समन्वय का आदेश दिया था। उन्होंने षड्रागचंद्रोदय, रामामात्य, रागमंजरी और नर्तननिर्णय नाम के चार ग्रंथ लिखे। उनके ग्रंथों में स्वयंभू स्वर का उल्लेख मिलता है।

कर्णाटक संगीत के विद्वान् रामामाला ने 1550 ई. के लगभग "स्वरमेलकलानिधि" की रचना की। उन्होंने 19 मेलों में रागों का वर्गीकरण किया। उनके ग्रंथ में भी स्वयंभू स्वर का उल्लेख मिलता है।

1609 ई. में सोमनाथ ने रागविबोध लिखा। यह दक्षिण में संभवत: राजमुंद्री के पास के रहनेवाले थे। इन्होंने रुद्रवीणा, शुद्ध और मध्यम मेल वीणा का विस्तृत वर्णन दिया है। इन्होंने जनक और जन्य के आधार पर रागों का वर्गीकरण किया है।

तंजोर के राजा रघुनाथ ने अपने मंत्री गोविंद दीक्षित की सहायता से 1620 ई. में "संगीतसुधा" का प्रणयन किया। उन्होंने पंद्रह मुख्य मेलों और पचास मुख्य रागों का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने 264 रागों का साधारण परिचय दिया है।

सन् 1630 ई. में व्यंकटमखी ने "चतुर्दंडीप्रकाशिका" लिखी। यह तंजोर के राजा रघुनाथ के सुपुत्र विजयराघव के आश्रय में थे। यह गोविंद दीक्षित के सुपुत्र थे। इन्होंने 72 मेलों में रागों का वर्गीकरण किया है और शुद्ध तथा मध्यममेल वीणा का वर्णन किया है।[12,13]

लगभग सन् 1630 ई. में दामोदर मिश्र ने "संगीतदर्पण" लिखा जो उस समय के उत्तरी भरत के संगीत पर अच्छा प्रकाश डालता है। इन्होंने गीत, ताल और नृत्त तीनों का विस्तृत वर्णन किया है।

17वीं शती में गोविंद ने "संग्रहचूड़ामणि" लिखा। इसमें 72 मेलकर्ता और वीणा का विस्तृत वर्णन है। गोविंद दक्षिण के निवासी थे। उन्होंने संभवत: 1680 और 1700 के बीच में उपर्युक्त ग्रंथ लिखा।

17वीं शती में ही अहोबल ने "संगीतपारिजात" नामक ग्रंथ लिखा। इस ग्रंथ का महत्व यह है कि इसमें वीणा के तार की लंबाई के द्वारा स्वरों के अंतराल समझाए गए हैं।

18वीं शती में श्रीनिवास ने "रागतत्वविबोध" लिखा। इन्होंने भी वीणा के तार द्वारा शुद्ध और विकृत स्वरों के स्थान बतलाए हैं। 17वीं-18वीं शती के बीच भावभट्ट ने अनूपविलास, अनूप संगीतरत्नाकर और अनूपांकुश की रचना की। यह बीकानेर के महाराज अनूपसिंह (1674-1709 ई.) के दरबार के पंडित थे। इनके ग्रंथ उत्तर भारत के संगीत पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। अपने ग्रंथ में इन्होंने ध्रुवपद का भी उल्लेख किया है।

वैसे तो ख्याल की गायकी अमीर खुसरो से प्रारंभ हो गई थी, किंतु जौनपुर के शर्की राजाओं के समय में यह अधिक पनपी और मुहम्मद शाह (1719) के समय में पुष्पित हुई। इने दरबार में अदारंग और सदारंग दो प्रसिद्ध बीनकार और गायक थे। इन लोगों ने सबसे अधिक ख्याल गायकी को प्रोत्साहन दिया और सैकड़ों ख्यालों की विभिन्न रागों में रचना की।

18वीं शती में तंजोर के मराठा राजा तुलजा जी ने "संगीतसारामृतम्" की रचना की। यह संगीत के अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने 21 मेल माने हैं।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

1823 ई. में पटना के मुहम्मद रज़ा ने "नगमाते असफ़ी" की रचना की। इन्होंने मुख्य समानताओं के आधार पर रागों का वर्गीकरण किया है और बिलाबल को शुद्ध ठाठ माना है।

जयपुर के महाराज प्रतापसिंह (1779-1804 ई.) ने देश भर के संगीत के विद्वानों को एकत्र किया। उन सबके परामर्श से "संगीतसार" नामक ग्रंथ रचा गया। इसमें भी बिलाबल शुद्ध ठाठ माना गया है।

19वीं शती में दक्षिण में त्यागराज ने बहुत सी कृतियों और कीर्तनों की रचना की। इन्होंने अपनी रचनाओं में रागों की स्वरसंगतियों को बहुत सुंदर रीति से ग्रंथित किया है। मुत्तुस्वामी दीक्षित और श्याम शास्त्री उनके समकालीन थे। इन्होंने भी बहुत सी सुंदर कृतियों और कीर्तनों की रचना की।

19वीं शती के अंतिम भाग में बंगाल के राजा शौरींद्र मोहन ठाकुर ने भारतीय संगीत को बहुत प्रोत्साहन दिया और "यूनिवर्सल हिस्टरी आफ़ म्यूज़िक" नामक ग्रंथ लिखा।

20वीं शती में पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर ने शास्त्रीय संगीत के प्रचार के लिए बहुत प्रयत्न किया और लगभग 35-40 पुस्तकों में गीतों को स्वरलिपि में प्रकाशित किया।

पंडित विष्णु नारायण भातखंडे ने संगीतशास्त्र पर "हिंदुस्तानी संगीत पद्धति" नामक ग्रंथ चार भागों में प्रकाशित किया और ध्रुवपद, धमार, तथा ख्यात का संग्रह करके "हिंदुस्तानी संगीत क्रमीक" नामक ग्रंथ के छह भाग प्रकाशित किए।

तत वाद्यों में भारत में इस समय मुख्यत: वीणा, सितार, इसराज और सरोद तथा सारंगी उपयोग में आ रहे हैं। सुषिर वाद्यों में बाँसुरी, अलगोजा, शहनाई, तूर या तुरही, सिंगी (श्रृंगी) और शंख, अवनद्ध या आनद्ध वाद्यों में मृदंग (पखावज), मर्दल (मादल या मादिलरा) हुडुक्क, दुंदुभि (नगाड़ा), ढोलक या ढोल, डमरू, डफ, खंजरी, तथा धन वाद्यों में कठताल, झाँझ और मंजीरा प्रचलित हैं।[2,3]

आधुनिक काल

विष्णु नारायण भातखण्डे

१८ वीं शताब्दी में घराने एक प्रकार से औपचारिक संगीत शिक्षा के केन्द्र थे परन्तु ब्रिटिश शासनकाल का आविर्भाव होने पर घरानों की रूपरेखा कुछ शिथिल होने लगी क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति के व्यवस्थापक कला की अपेक्षा वैज्ञानिक प्रगति को अधिक मान्यता देते थे और आध्यात्म की अपेक्षा इस संस्कृति में भौतिकवाद प्रबल था।

भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत कला को जो पवित्रता एवं आस्था का स्थान प्राप्त था तथा जिसे कुछ मुसलमान शासकों ने भी प्रश्रय दिया और संगीत को मनोरंजन का उपकरण मानते हुए भी इसके साधना पक्ष को विस्मृत न करते हुए संगीतज्ञों तथा शास्त्रकारों को राज्य अथवा रियासतों की ओर से सहायता दे कर संगीत के विकासात्मक पक्ष को विस्मृत नहीं किया। परन्तु ब्रिटिश राज्य के व्यस्थापकों ने संगीत कला के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाकर उसे यद्यपि व्यक्तित्व के विकास का अंग माना परन्तु यह दृष्टिकोण आध्यात्मिकता के धरातल पर स्थित न था। उन्होंने अन्य विषयों के समान ही एक विषय के रूप में ही इसे स्वीकार किया, परन्तु वैज्ञानिक प्रगति की प्रभावशीलता के कारण यह विषय अन्य पाठ्य विषयों के बीच लगभग उपेक्षित ही रहा।[5,7]

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

भारत में रचित संगीत ग्रन्थ

नाट्यशास्त्र	भरत मुनि	
बृहद्देशी	मतंग मुनि	
नारदीय शिक्षा		
संगीत मकरंद		
सरस्वती हृदयालंकार	मिथिला के राजा नान्यदेव	11वीं शती
अभिलषितार्थ चिंतामणि	सोमेश्वर	12वीं शती
संगीतचूड़ामणि	सोमेश्वर के पुत्र प्रतापचक्रवर्ती या जगदेकमल्ल	12वीं शती
संगीतसुधाकर	चालुक्यवंशीय सौराष्ट्रनरेश महाराज हरिपाल	1175 ई.
संगीतरत्नावली	सोमराज देव या सोमभूपाल	1180
गीतगोविन्द	जयदेव	12वीं शती ई.
पंडिताराध्यचरितम्	पाल्कुरिकि सोमनाथ	तेलगु में, 1270 ई.
संगीतरत्नाकर	शारंगदेव	१३वीं शती
श्रृंगारहार	शाकंभरि के राजा हम्मीर	लगभग 1300 ई.
संगीत-समय-सार	जैन आचार्य पार्श्वदेव	लगभग 1300
संगीतसार	विद्यारण्य	चौदहवीं शताब्दी
रागतरंगिणी	लोचन कवि	पन्द्रहवीं शताब्दी

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

संगीतशिरोमणि	अनेक पण्डितों का योगदान	मलिक सुलतान के आह्वान पर, पन्द्रहवीं शताब्दी
रसिकप्रिया	मेवाड़ के महाराणा कुंभ	गीतगोविन्द की टीका, 1431-1469 ई.
संगीतराज	महाराणा कुम्भ	
मानकुतूहल	ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर	हिन्दी में, 15वीं शती
षड्रागचंद्रोदय	पुण्डरीक विट्ठल	सोलहवीं शताब्दी
रागमाला	पुण्डरीक विट्ठल	
रागमंजरी	पुण्डरीक विट्ठल	
नर्तननिर्णय	पुण्डरीक विट्ठल	
स्वरमेलकलानिधि	कर्णाटक संगीत के विद्वान् रामामाला	1550 ई.
स्वरमेल कलानिधि	रामामात्य	सोलहवीं शताब्दी
रागविबोध	सोमनाथ	1609 ई.
संगीतसुधा	तंजोर के राजा रघुनाथ	अपने मंत्री गोविंद दीक्षित की सहायता से 1620 ई. में
चतुर्दंडीप्रकाशिका	व्यंकटमखी	सन् 1630 ई.
संगीतदर्पण	दामोदर मिश्र	लगभग सन् 1630 ई.
हृदय प्रकाश	हृदयनारायण देव	सत्रहवीं शताब्दी
हृदय कौतुकम्	हृदयनारायण देव	सत्रहवीं शताब्दी

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

संग्रहचूड़ामणि	गोविंद	1680-1700
संगीत पारिजात	अहोबल	१७वीं शती
संगीत दर्पण	दामोदर पण्डित	
अनूपविलास	भावभट्ट	
अनूपसंगीतरत्नाकार	भावभट्ट	
अनुपांकुश	भावभट्ट	
संगीतसार	जयपुर के महाराज प्रतापसिंह	1779-1804 ई.
अष्टोत्तरशतताललक्षणाम्	सोमनाथ	
रागतत्वविबोध	श्रीनिवास	18वीं शती
रागतत्वविबोध:	श्रीनिवास पण्डित	अठारहवीं शताब्दी
संगीतसारामृतम्	तंजोर के मराठा राजा तुलजेन्द्र भोंसले	18वीं शती
रागलक्षमण्	तुलजेन्द्र भोंसले	
लक्ष्यसंगीतम्	विष्णु नारायण भातखंडे	संस्कृत ; 1910, १९३४
अभिनवरागमंजरी	विष्णु नारायण भातखंडे	संस्कृत ; 1910, १९३४
हिंदुस्तानी संगीत पद्धति	विष्णु नारायण भातखंडे	मराठी में
हिंदुस्तानी संगीत क्रमीक (छह भागों में)	विष्णु नारायण भातखंडे	
संगीत तत्त्वदर्शक	विष्णु दिगंबर पलुस्कर	20वीं शती

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

परिणाम

गंधर्व वेद चार उपवेदों में से एक उपवेद है। अन्य तीन उपवेद हैं - आयुर्वेद, शिल्पवेद और धनुर्वेद। गन्धर्ववेद के अन्तर्गत भारतीय संगीत, शास्त्रीय संगीत, राग, सुर, गायन तथा वाद्य यन्त्र आते हैं। गन्धर्व वेद सामवेद का उपवेद है। गन्धर्व वेद में ध्वनि के मूल तत्व को प्रदर्शित किया गया है। प्राचीन शास्त्रों में वर्णित है कि सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति नाद यानी ध्वनि से उत्पन्न हुई है एक है आहत नाद एव दूसरा है अनाहत नाद उसी ध्वनि या नाद को गन्धर्व कहा गया है अर्थात गन्धर्व से सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति हुई है।

गन्धर्ववाद के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति गन्धर्व अर्थात ध्वनि से हुई है जो कि प्राचीन वैदिक शास्त्र में भी स्पष्ट वर्णित है। आज विज्ञान का युग है जँहा सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित की गई है जिसमें एक सिद्धांत सृष्टि की उत्पत्ति ध्वनि तरंग से हुई है कहता है ।

परिचय

भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति वेदों से मानी जाती है। सामवेद में संगीत के बारे में गहराई से चर्चा की गई है। भारतीय शास्त्रीय संगीत गहरे तक आध्यात्मिकता से प्रभावित रहा है, इसलिए इसकी शुरुआत मनुष्य जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के साधन के रूप में हुई। संगीत की महत्ता इस बात से भी स्पष्ट है कि भारतीय आचार्यों ने इसे 'पंचम वेद' या गंधर्व वेद की संज्ञा दी है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र पहला ऐसा ग्रंथ था जिसमें नाटक, नृत्य और संगीत के मूल सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है।

भारतीय संगीत प्राचीन काल से भारत मे सुना और विकसित होता संगीत है। इस संगीत का प्रारंभ वैदिक काल से भी पूर्व का है। इस संगीत का मूल स्रोत वेदों को माना जाता है। हिंदु परंपरा मे ऐसा मानना है कि ब्रह्मा ने नारद मुनि को संगीत वरदान में दिया था।

पंडित शारंगदेव कृत "संगीत रत्नाकर" ग्रंथ मे भारतीय संगीत की परिभाषा "गीतम, वादयम् तथा नृत्यं त्रयम संगीतमुच्यते" कहा गया है। गायन, वाद्य वादन एवम् नृत्य; तीनों कलाओं का समावेश संगीत शब्द में माना गया है। तीनो स्वतंत्र कला होते हुए भी एक दूसरे की पूरक है। भारतीय संगीत की दो प्रकार प्रचलित है; प्रथम कर्नाटक संगीत, जो दक्षिण भारतीय राज्यों में प्रचलित है और हिन्दुस्तानी संगीत शेष भारत में लोकप्रिय है। भारतवर्ष की सारी सभ्यताओं में संगीत का बड़ा महत्व रहा है। धार्मिक एवं सामाजिक परंपराओं में संगीत का प्रचलन प्राचीन काल से रहा है। इस रूप में, संगीत भारतीय संस्कृति की आत्मा मानी जाती है। वैदिक काल में अध्यात्मिक संगीत को मार्गी तथा लोक संगीत को 'देशी' कहा जाता था। कालांतर में यही शास्त्रीय और लोक संगीत के रूप में दिखता है।

वैदिक काल में सामवेद के मंत्रों का उच्चारण उस समय के वैदिक सप्तक या सामगान के अनुसार सातों स्वरों के प्रयोग के साथ किया जाता था। गुरू-शिष्य परंपरा के अनुसार, शिष्य को गुरू से वेदों का ज्ञान मौखिक ही प्राप्त होता था व उन में किसी प्रकार के परिवर्तन की संभावना से मनाही थी। इस तरह प्राचीन समय में वेदों व संगीत का कोई लिखित रूप न होने के कारण उनका मूल स्वरूप लुप्त होता गया।[7,8]

भारतीय संगीत के सात स्वर

भारतीय संगीत में सात शुद्ध स्वर है।

- षड्ज (सा)
- ऋषभ (रे)
- गंधार (ग)
- मध्यम (म)
- पंचम (प)
- धैवत (ध)
- निषाद (नी)

शुद्ध स्वर से उपर या नीचे विकृत स्वर आते है। सा और प के कोई विकृत स्वर नही होते। रे, ग, ध और नी के विकृत स्वर नीचे होते है और उन्हे कोमल' कहा जाता है। म का विकृत स्वर उपर होता है और उसे तीव्र कहा जाता है। समकालीन भारतीय शास्त्रीय संगीत में ज्यादातर यह बारह स्वर इस्तमाल किये जाते है। पुरातन काल से ही भारतीय स्वर सप्तक संवाद-सिद्ध है। महर्षि भरत ने इसी के आधार पर २२ श्रुतियों का प्रतिपादन किया था जो केवल भारतीय शास्त्रीय संगीत की ही विशेषतशुद्ध स्वर से उपर या

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

नीचे विकृत स्वर आते है। सा और प के कोई विकृत स्वर नही होते। रे, ग, ध और नी के विकृत स्वर नीचे होते है और उन्हे कोमल' कहा जाता है। म का विकृत स्वर उपर होता है और उसे तीव्र कहा जाता है। समकालीन भारतीय शास्त्रीय संगीत में ज्यादातर यह बारह स्वर इस्तमाल किये जाते है। पुरातन काल से ही भारतीय स्वर सप्तक संवाद-सिद्ध है। महर्षि भरत ने इसी के आधार पर २२ श्रुतियों का प्रतिपादन किया था जो केवल भारतीय शास्त्रीय संगीत की ही विशेषतशुद्ध स्वर से उपर या नीचे विकृत स्वर आते है। सा और प के कोई विकृत स्वर नही होते। रे, ग, ध और नी के विकृत स्वर नीचे होते है और उन्हे कोमल' कहा जाता है। म का विकृत स्वर उपर होता है और उसे तीव्र कहा जाता है। समकालीन भारतीय शास्त्रीय संगीत में ज्यादातर यह बारह स्वर इस्तमाल किये जाते है। पुरातन काल से ही भारतीय स्वर सप्तक संवाद-सिद्ध है। महर्षि भरत ने इसी के आधार पर २२ श्रुतियों का प्रतिपादन किया था जो केवल भारतीय शास्त्रीय संगीत की ही विशेषतशुद्ध स्वर से उपर या नीचे विकृत स्वर आते है। सा और प के कोई विकृत स्वर नही होते। रे, ग, ध और नी के विकृत स्वर नीचे होते है और उन्हे कोमल' कहा जाता है। म का विकृत स्वर उपर होता है और उसे तीव्र कहा जाता है। समकालीन भारतीय शास्त्रीय संगीत में ज्यादातर यह बारह स्वर इस्तमाल किये जाते है। पुरातन काल से ही भारतीय स्वर सप्तक संवाद-सिद्ध है। महर्षि भरत ने इसी के आधार पर २२ श्रुतियों का प्रतिपादन किया था जो केवल भारतीय शास्त्रीय संगीत की ही विशेषता है।[8,9]

निष्कर्ष

प्राचीन भारत में सिंधु घाटी सभ्यता के पश्चात जिस नवीन सभ्यता का विकास हुआ उसे ही वैदिक सभ्यता के नाम से जाना जाता है। इस काल की जानकारी हमे मुख्यत: वैदिक साहित्य से प्राप्त होती है, जिसमे ऋग्वेद सर्वप्राचीन होने के कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वैदिक काल को ऋग्वैदिक या पूर्व वैदिक काल (1500–1000 ई.पू.) तथा उत्तर वैदिक काल (1000–600 ई.पू.) में बांटा गया है। वैदिक काल या वैदिक युग (ल. 1500 से ल. 500 ईसा पूर्व), शहरी सिंधु घाटी सभ्यता के अंत और उत्तरी मध्य-गंगा में शुरू होने वाले एक "दूसरे शहरीकरण" के बीच उत्तरी भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास में अवधि है।[9,10]

वैदिक साहित्य जो इस अवधि के दौरान लिखे गए, समकालीन जीवन का विवरण देने वाले प्रख्यात ग्रंथ हैं और साथ ही विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ भी है। जिन्हें ऐतिहासिक माना गया है और अवधि को समझने के लिए प्राथमिक स्रोतों का गठन किया गया है। संबंधित पुरातात्विक अभिलेखों के साथ ये दस्तावेज वैदिक संस्कृति के विकास का पता लगाने और उस काल का अनुमान लगाने की अनुमति देते हैं।[1]

वेदों की रचना और मौखिक रूप से एक पुरानी हिन्द-आर्य भाषाएँ बोलने वालों द्वारा सटीक रूप से प्रेषित की गई थी, जो इस अवधि के शुरू में भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में चले गए थे। वैदिक समाज "पितृसत्तात्मक" था। आरंभिक वैदिक आर्य पंजाब में केंद्रित एक कांस्य युग के समाज से थे, जो कि राज्यों के बजाय जनजातियों में संगठित थे। इनका मुख्य रूप से जीवन देहाती था। ल. 1500–1300 ई.पू., वैदिक आर्य पूर्व में उपजाऊ पश्चिमी गंगा के मैदान में फैल गए और उन्होंने लोहे के उपकरण अपना लिए, जो जंगल को साफ करने और अधिक व्यवस्थित, कृषि जीवन के लिए उपयोगी थे।

वैदिक काल के उत्तरार्ध में भारत राजवंश, यदुवंश और कुरु साम्राज्य मुख्य शक्ति के रूप में उबरे। वैदिक हिन्दू समाज यज्ञ परक था और यज्ञ सामाजिक व्यवस्था का एक अंग था। इस काल की वर्ण व्यवस्था "कार्यानुसार" थी ना की जन्मनुसार थी।

वैदिक काल के अंत में (ल. 700 से 500 ई.पू मे) महानगरो और बड़े राज्यों महाजनपद का उदय हुआ। इसके साथ-साथ श्रमण परम्परा (जैन धर्म और बौद्ध धर्म सहित) में वृद्धि हुई, जिसने वैदिक परंपराओं को चुनौती दी।

वैदिक संस्कृति के चरणों से पहचानी जाने वाली पुरातात्विक संस्कृतियों में चार मुख्य है–[2]

1. चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति
2. काले और लाल बर्तन संस्कृति
3. गेरू की कब्र संस्कृति
4. चित्रित ग्रे वेयर संस्कृति में गेरू रंग की बर्तनों की संस्कृति

वेदों के अतिरिक्त संस्कृत के संस्कृत साहित्य के अन्य कई ग्रंथो की रचना भी 9वी शताब्दी से 5वी शताब्दी ई.पू काल में हुई थी। वेदांगसूत्रों की रचना मन्त्र, ब्राह्मणग्रंथ और उपनिषद इन वैदिकग्रन्थों को व्यवस्थित करने मे हुआ है। रामायण, महाभारत और पुराणों की रचना हुआ जो इस काल के ज्ञानप्रदायी स्रोत माना गया हैं। अनन्तर चार्वाक, तान्त्रिकों, बौद्ध और जैन धर्म का उदय भी हुआ।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

इतिहासकारों का मानना है कि आर्य मुख्यतः उत्तरी भारत के मैदानी इलाकों में रहते थे इस कारण आर्य सभ्यता का केन्द्र मुख्यत उत्तरी भारत था। इस काल में उत्तरी भारत (आधुनिक पाकिस्तान, बांग्लादेश तथा नेपाल समेत) कई महाजनपदों में बंटा था।[10,11]

वैदिक सभ्यता का नाम ऐसा इस लिए पड़ा कि वेद उस काल की जानकारी का प्रमुख स्रोत हैं। वेद चार है - ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद। इनमें से ऋग्वेद की रचना सबसे पहले हुई थी। ऋग्वेद में ही गायत्री मन्त्र है जो सावित्री (सूर्य देव) को समर्पित है।

ऋग्वेद के काल निर्धारण में विद्वान एकमत नहीं है। सबसे पहले मैक्स मूलर ने वेदों के काल निर्धारण का प्रयास किया। उसने बौद्ध धर्म (550 ईसा पूर्व) [3]से पीछे की ओर चलते हुए वैदिक साहित्य के तीन ग्रंथों की रचना को मनमाने ढंग से 200-200 वर्षों का समय दिया और इस तरह ऋग्वेद के रचना काल को 1200 ईसा पूर्व के करीब मान लिया पर निश्चित रूप से उसके आंकलन का कोई आधार नहीं था।

वैदिक काल को मुख्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है- ऋग्वैदिक काल और उत्तर वैदिक काल। ऋग्वैदिक काल आर्यों के आगमन के तुरंत बाद का काल था जिसमें कर्मकांड गौण थे पर उत्तरवैदिक काल में हिन्दू धर्म में कर्मकांडों की प्रमुखता बढ़ गई।

ऋग्वैदिक काल (1500-1000 ई.पू.)

इस काल की तिथि निर्धारण जितनी विवादास्पद रही है उतनी ही इस काल के लोगों के बारे में सटीक जानकारी। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि इस समय तक केवल इसी ग्रंथ (ऋग्वेद) की रचना हुई थी। मैक्स मूलर के अनुसार आर्य का मूल निवास मध्य ऐशिया है।आर्यो द्वारा निर्मित सभ्यता वैदिक काल कहलाई। आर्यो द्वारा विकसित सभ्ता ग्रामीण सभ्यता कहलायी। आर्यों की भाषा संस्कृत थी।

मैक्स मूलर ने जब अटकलबाजी करते हुए इसे 1200 ईसा पूर्व से आरंभ होता बताया था (लेख का आरंभ देखें) उसके समकालीन विद्वान डब्ल्यू. डी. ह्विटनी ने इसकी आलोचना की थी। उसके बाद मैक्स मूलर ने स्वीकार किया था कि " पृथ्वी पर कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो निश्चित रूप से बता सके कि वैदिक मंत्रों की रचना 1000 ईसा पूर्व में हुई थी या कि 1500 ईसापूर्व में या 2000 या 3000 "।[4]

ऐसा माना जाता है कि आर्यों का एक समूह भारत के अतिरिक्त ईरान (फ़ारस) और यूरोप की तरफ़ भी गया था। ईरानी भाषा के प्राचीनतम ग्रंथ अवेस्ता की सूक्तियां ऋग्वेद से मिलती जुलती हैं। अगर इस भाषिक समरूपता को देखें तो ऋग्वेद का रचनाकाल 1000 ईसापूर्व आता है। लेकिन बोगाज-कोई (एशिया माईनर) में पाए गए 1400 ईसा पूर्व के अभिलेख में हिंदू देवताओं इंद, मित्रावरुण, नासत्य इत्यादि को देखते हुए इसका काल और पीछे माना जा सकता है।

बाल गंगाधर तिलक ने ज्योतिषीय गणना करके इसका काल 6000 ई.पू. माना था। हरमौन जैकोबी ने जहाँ इसे 4500 ईसापूर्व से 2500 ईसापूर्व के बीच आंका था वहीं सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान विंटरनित्ज़ ने इसे 3000 ईसापूर्व का बताया था।[11,12]

प्रशासन

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई कुल थी। एक कुल में एक घर में एक छत के नीचे रहने वाले लोग शामिल थे। परिवार के मुखिया को कुलुप कहा जाता था। एक ग्राम कई कुलों से मिलकर बना होता था। ग्रामों का संगठन विश् कहलाता था और विशों का संगठन जन। कई जन मिलकर राष्ट्र बनाते थे। ग्राम के मुखिया को ग्रामिणी, विश का प्रधान विशपति ,

जन का शासक राजन् (राजा) तथा राष्ट्र के प्रधान को सम्राट कहते थे। आर्यों की प्रशासनिक संस्थाएं काफी सशक्त अवस्था में थी। प्रारंभ में राजा का चुनाव जनता के द्वारा किया जाता था बाद में उसका पद धीरे-धीरे पैतृक होता चला गया परंतु राजा निरंकुश नहीं होता था वह जनता की सुरक्षा की पूरी जिम्मेदारी लेता था इस सुरक्षा व्यवस्था के बदले में लोग राजा को स्वैच्छिक कर देते थे जिसे बलि कहा जाता था। ऋग्वैदिक आर्यों की दो महत्वपूर्ण राजनैतिक संस्थाएं थीं जिन्हें सभा और समिति कहा जाता था-[5]

१."सभा-" इसे उच्च सदन भी कहा जा सकता है यह समाज से आए हुए बुद्धिमान और अनुभवी व्यक्तियों की संस्था थी। सभा के सदस्यों को सभेय अथवा सभासद कहा जाता था और सभा का अध्यक्ष सभापति कहा जाता था सभा के सदस्यों को पितर कहा जाता था जिससे पता लगता है कि ये बुजुर्ग और अनुभवी लोग थे।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

२. "समिति-" समिति आम जनमानस की संस्था थी उसके सदस्य समस्त नागरिक होते थे इसमें सामान्य विषयों पर चर्चा होती थी । उसके अध्यक्ष को ईशान कहा जाता था। प्रारंभ में समिति में स्त्रियां भी आती थी और उसमें आकर ऋक नामक गान किया करती थी। आर्यों की सबसे प्राचीन संस्था को जनसभा थी उसे "विदथ" कहा जाता था।

धर्म

ऋग्वैदिक काल में प्राकृतिक शक्तियों की ही पूजा की जाती थी और कर्मकांडों की प्रमुखता नहीं थी। ऋग्वैदिक काल धर्म कीं अन्य विशेषताएं • क्रत्या, निऋति, यातुधान, ससरपरी आदि के रूप मे अपकरी शक्तियो अर्थात, राछसों, पिशाच एवं अप्सराओ का जिक्र दिखाई पडता है। इस समय में मूर्ति पूजन नहीं होता था और ना ही मंत्रोचार किया जाता था। कर्मकांड जैसे पूजा-पाठ, व्रत,यज्ञ आदि इस काल में नहीं होते थे।।

उत्तरवैदिक काल (1000–600 ई०पू०)

ऋग्वैदिक काल में आर्यों का निवास स्थान सिंधु तथा सरस्वती नदियों के बीच में था। बाद में वे सम्पूर्ण उत्तर भारत में फ़ैल चुके थे। सभ्यता का मुख्य क्षेत्र गंगा और उसकी सहायक नदियों का मैदान हो गया था। गंगा को आज भारत की सबसे पवित्र नदी माना जाता है। इस काल में विश् का विस्तार होता गया और कई जन विलुप्त हो गए। भरत, त्रित्सु और तुर्वस जैसे जन् राजनीतिक हलकों से ग़ायब हो गए जबकि पुरू पहले से अधिक शक्तिशाली हो गए। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में कुछ नए राज्यों का विकास हो गया था, जैसे - काशी, कोसल, विदेह (मिथिला), मगध और अंग।

ऋग्वैदिक काल में सरस्वती नदी को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। गेगा का एक बार और यमुना नदी का उल्लेख तीन बार हुआ है। इस काल मे कौसाम्बी नगर मैं पहली बार पक्की ईटो का प्रयोग किया गया। इस काल मे वर्ण व्यवसाय के बजाय जन्म के आधार पे निर्धारित होने लगे।

वैदिक साहित्य

- वैदिक साहित्य में चार वेद एवं उनकी संहिताओं, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों एवं वेदांगों को शामिल किया जाता है।
- वेदों की संख्या चार है- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद।
- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद विश्व के प्रथम प्रमाणिक ग्रन्थ है।
- वेदों को अपौरुषेय कहा गया है। गुरु द्वारा शिष्यों को मौखिक रूप से कंठस्त कराने के कारण वेदों को "श्रुति" की संज्ञा दी गई है।

ऋग्वेद

1. ऋग्वेद देवताओं की स्तुति से सम्बंधित रचनाओं का संग्रह है।

2. यह 10 मंडलों में विभक्त है। इसमे 2 से 7 तक के मंडल प्राचीनतम माने जाते हैं। प्रथम अष्टम, नवम एवं दशम मंडल बाद में जोड़े गए हैं। इसमें 1028 (1017 साकल मे+11 बालखिल्य मे)सूक्त हैं।

3. इसकी भाषा पद्यात्मक है।

4. ऋग्वेद में 33 प्रकार के देवों (दिव्य गुणो से युक्त पदार्थो) का उल्लेख मिलता है।

5. प्रसिद्ध गायत्री मंत्र जो सूर्य से सम्बंधित देवी गायत्री को संबोधित है, ऋग्वेद में सर्वप्रथम प्राप्त होता है।

6. ' असतो मा सद्गमय ' वाक्य ऋग्वेद से लिया गया है।

7. ऋग्वेद में मंत्र को कंठस्त करने में स्त्रियों के नाम भी मिलते हैं, जिनमें प्रमुख हैं- लोपामुद्रा, घोषा, शाची, पौलोमी एवं काक्षावृती आदि।

8. इसके पुरोहित के नाम होत्री है।

9. गौत्र, शूद्र, वर्ण शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख है।

10. 9 वां मंडल के सभी 114 सूक्त सोम को समर्पित हैं।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

11. इसमे लगभग 11000 श्लोक हैं।

12. इसके प्रथम श्लोक मे अग्नि का उल्लेख है।

13. इसमे कई स्थानो पर ऋषभदेव का उल्लेख मिलता है।

यजुर्वेद

- यजु का अर्थ होता है यज्ञ। इसमें धनुर्विद्या का उल्लेख है।
- इसके पाठकर्ता को अध्वर्यु कहते हैं।
- यजुर्वेद वेद में यज्ञ की विधियों का वर्णन किया गया है।
- इसमे मंत्रों का संकलन आनुष्ठानिक यज्ञ के समय सस्तर पाठ करने के उद्देश्य से किया गया है।
- इसमे मंत्रों के साथ साथ धार्मिक अनुष्ठानों का भी विवरण है, जिसे मंत्रोच्चारण के साथ संपादित किए जाने का विधान सुझाया गया है।
- यजुर्वेद की भाषा पद्यात्मक एवं गद्यात्मक दोनों है।
- यजुर्वेद की दो शाखाएं हैं- कृष्ण यजुर्वेद तथा शुक्ल यजुर्वेद।
- कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखाएं हैं- मैत्रायणी संहिता, काठक संहिता, कपिन्थल तथा संहिता। शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखाएं हैं- मध्यान्दीन तथा कण्व संहिता। शुक्ल यजुर्वेद पद्य में मिलता है
- यह 40 अध्यायों में विभाजित है।
- वाजसनेय शुक्ल-यजुर्वेद की संहिताओं को बोला जाता है
- यजुर्वेद का ब्राह्मण ग्रंथ शतपथ ब्राह्मण है
- यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद है (धनुर्वेद अस्त्र-शस्त्र से संबंधित है द्रोणाचार्य,विश्वामित्र,कृपाचार्य इससे संबंधित प्रमुख आचार्य हैं)
- इसी ग्रन्थ में पहली बार राजसूय तथा वाजपेय जैसे दो राजकीय समारोह का उल्लेख है।
- इशोपनिषद यजुर्वेद का अंतिम भाग है यह आध्यात्मिकता से संबंधित है

सामवेद

सामवेद की रचना ऋग्वेद में दिए गए मंत्रों को गाने योग्य बनाने हेतु की गयी थी।

- इसमे 1810 छंद हैं जिनमें 75 को छोड़कर शेष सभी ऋग्वेद में उल्लेखित हैं।
- सामवेद तीन शाखाओं में विभक्त है- कौथुम, राणायनीय और जैमनीय।
- सामवेद को भारत की प्रथम संगीतात्मक पुस्तक होने का गौरव प्राप्त है।
- सामवेद के ब्राह्मण ग्रंथ पंचविश,ताण्डय,जैमिनीय है
- गंधर्व-वेद सामवेद का उपवेद है यह भरत,नारद मुनि से संबंधित है इसमें गायन,नृत्य आदि वर्णित हैं[12,13]

ब्राह्मण

वैदिक मन्त्रों तथा संहिताओं को ब्रह्म कहा गया है। वहीं ब्रह्म के विस्तारित रुप को ब्राह्मण कहा गया है। पुरातन ब्राह्मण में ऐतरेय, शतपथ, पंचविश, तैतरीय आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य ने मन्त्र सहित ब्राह्मण ग्रंथों की उपदेश आदित्य से प्राप्त किया है। संहिताओं के अन्तर्गत कर्मकांड की जो विधि उपदिष्ट है, ब्राह्मण मे उसी की सप्रमाण व्याख्या देखने को मिलता है। प्राचीन परम्परा में आश्रमानुरुप वेदों का पाठ करने की विधि थी अतः ब्रह्मचारी ऋचाओं ही पाठ करते थे ,गृहस्थ ब्राह्मणों का, वानप्रस्थ आरण्यकों और संन्यासी उपनिषदों का। गार्हस्थ्यधर्म का मननीय वेदभाग ही ब्राह्मण है।

- यह मुख्यतः गद्य शैली में उपदिष्ट है।
- ब्राह्मण ग्रंथों से हमें बिम्बिसार के पूर्व की घटना का ज्ञान प्राप्त होता है।
- ऐतरेय ब्राह्मण में आठ मंडल हैं और पाँच अध्याय हैं। इसे पंजिका भी कहा जाता है।
- ऐतरेय ब्राह्मण में राज्याभिषेक के नियम प्राप्त होते हैं।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

- तैतरीय ब्राह्मण कृष्णयजुर्वेद का ब्राह्मण है।
- शतपथ ब्राह्मण में १०० अध्याय,१४ काण्ड और ४३८ ब्राह्मण है। गान्धार, शल्य, कैकय, कुरु, पांचाल, कोसल, विदेह आदि स्थलों का भी उल्लेख होता हैशतपथवर्ती ब्राह्मण गोपथ है।

आरण्यक

आरण्यक वेदों का वह भाग है जो गृहस्थाश्रम त्याग उपरान्त वानप्रस्थ लोग जंगल में पाठ किया करते थे | इसी कारण आरण्यक नामकरण किया गया।

- इसका प्रमुख प्रतिपाद्य विषय रहस्यवाद, प्रतीकवाद, यज्ञ और पुरोहित दर्शन है।
- वर्तमान में सात अरण्यक उपलब्ध हैं।
- सामवेद और अथर्ववेद का कोई आरण्यक स्पष्ट और भिन्न रूप में उपलब्ध नहीं है।

उपनिषद

उपनिषद प्राचीनतम दार्शनिक विचारों का संग्रह है। उपनिषदों में 'वृहदारण्यक' तथा 'छान्दोन्य', सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इन ग्रन्थों से बिम्बिसार के पूर्व के भारत की अवस्था जानी जा सकती है। परीक्षित, उनके पुत्र जनमेजय तथा पश्चात कालीन राजाओं का उल्लेख इन्हीं उपनिषदों में किया गया है। इन्हीं उपनिषदों से यह स्पष्ट होता है कि आर्यों का दर्शन विश्व के अन्य सभ्य देशों के दर्शन से सर्वोत्तम तथा अधिक आगे था। आर्यों के आध्यात्मिक विकास, प्राचीनतम धार्मिक अवस्था और चिन्तन के जीते-जागते जीवन्त उदाहरण इन्हीं उपनिषदों में मिलते हैं। उपनिषदों की रचना संभवतः बुद्ध के काल में हुई, क्योंकि भौतिक इच्छाओं पर सर्वप्रथम आध्यात्मिक उन्नति की महत्ता स्थापित करने का प्रयास बौद्ध और जैन धर्मों के विकास की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ।

- कुल उपनिषदों की संख्या 108 है।
- मुख्य रूप से शास्वत आत्मा, ब्रह्म, आत्मा-परमात्मा के बीच सम्बन्ध तथा विश्व की उत्पत्ति से सम्बंधित रहस्यवादी सिधान्तों का विवरण दिया गया है।
- "सत्यमेव जयते" मुण्डकोपनिषद से लिया गया है।
- मैत्रायणी उपनिषद् में त्रिमूर्ति और चार्तु आश्रम सिद्धांत का उल्लेख है।

वेदांग

युगान्तर में वैदिक अध्ययन के लिए छः विधाओं (शाखाओं) का जन्म हुआ जिन्हें 'वेदांग' कहते हैं। वेदांग का शाब्दिक अर्थ है वेदों का अंग, तथापि इस साहित्य के पौरूषेय होने के कारण श्रुति साहित्य से पृथक ही गिना जाता है। वेदांग को स्मृति भी कहा जाता है, क्योंकि यह मनुष्यों की कृति मानी जाती है। वेदांग सूत्र के रूप में हैं इसमें कम शब्दों में अधिक तथ्य रखने का प्रयास किया गया है।

वेदांग की संख्या 6 है

- शिक्षा- स्वर ज्ञान (वेद की नासिका)
- कल्प- धार्मिक रीति एवं पद्धति (वेद के हाथ)
- निरुक्त- शब्द व्युत्पत्ति शास्त्र (वेद के कान)
- व्याकरण- व्याकरण (वेद के मुख)
- छंद- छंद शास्त्र (वेद के पैर)
- ज्योतिष- खगोल विज्ञान (वेद की आंखे)

सूत्र साहित्य

सूत्र साहित्य वैदिक साहित्य का अंग है तथा यह उसे समझने में सहायक भी है।

ब्रह्म सूत्र-श्री वेद व्यास ने वेदांत पर यह परमगूढ़ ग्रंथ लिखा है जिसमें परमसत्ता, परमात्मा, परमसत्य, ब्रह्मस्वरूप ईश्वर तथा उनके द्वारा सृष्टि और ब्रह्मतत्त्व वर गूढ़ विवेचना की गई है। इसका भाष्य श्रीमद् आदिशंकराचार्य जी ने भगवान व्यास जी के कहने पर लिखा था।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal | Impact Factor: 3.289|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 1, Issue 3, December 2014

कल्प सूत्र- ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण। वेदों का हस्त स्थानीय वेदांग।

श्रोत सूत्र- महायज्ञ से सम्बंधित विस्तृत विधि-विधानों की व्याख्या। वेदांग कल्पसूत्र का पहला भाग।

स्मार्तसूत्र - षोडश संस्कारों का विधान करने वाला कल्प का दूसरा भाग।

शुल्बसूत्र- यज्ञ स्थल तथा अग्निवेदी के निर्माण तथा माप से सम्बंधित नियम इसमें हैं। इसमें भारतीय ज्यामिति का प्रारम्भिक रूप दिखाई देता है। कल्प का तीसरा भाग।

धर्म सूत्र- इसमें सामाजिक धार्मिक कानून तथा आचार संहिता है। कल्प का चौथा भाग

गृह्य सूत्र- परुवारिक संस्कारों, उत्सवों तथा वैयक्तिक यज्ञों से सम्बंधित विधि-विधानों की चर्चा है।[13]

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. "कल्प विग्रह।". मूल से 20 अप्रैल 2011 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 14 मार्च 2011.
2. ↑ Witzel 1989.
3. ↑ "संग्रहीत प्रति". मूल से 22 जुलाई 2013 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2 मई 2012.
4. ↑ "संग्रहीत प्रति". मूल से 19 सितंबर 2013 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2 मई 2012.
5. ↑ ऋग्वैदिक आर्यों का जीवन।
6. बृहद्देशी आदि कई प्राचीन संगीत ग्रन्थ (देवनागरी और रोमन में)
7. भारतीय संगीत में स्त्रियों का योगदान
8. भारतीय शास्त्रीय संगीत सबसे अधिक पुराना (मेरी खबर)
9. संस्कृति ने जोडे संगीत में नए आयाम (देशबंधु)
10. काशी में संगीत की परंपरा (काशी कथा)
11. रामविलास का संगीत-दर्शन
12. संगीत का इतिहास और भारतीय नवजागरण की समस्याएँ (गूगल पुस्तक ; लेखक : डॉ रामविलास शर्मा)
13. "India Songs". मूल से 24 सितंबर 2011 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 29 सितंबर 2011.